परम्परागत चित्रों में मानवाकृति रचना

डॉ0 पूजा कपिल
प्रवक्ता, चित्रकला विभाग, आई0एन0 पी0जी0 कॉलिज, मेरठ

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ0 पूजा कपिल,
परम्परागत चित्रों में मानवाकृति रचना,
Artistic Narration 2017,
Vol. VIII, No.2, pp 100- 105
http://anubooks.com/?page_id=485

सारांश

भारतीय संस्कृति में चाहे वह प्राचीन कला सम्बन्धी ग्रन्थ हो या मूर्तिशिल्प अथवा चित्रकला सभी में मानवाकृतियों का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है जहाँ मानव की आदर्श–यथार्थ, सूक्ष्म–स्थूल आदि अनेक रूपों में कल्पना की गई है। भारतीय कला एवं संस्कृति का तो आधार ही मानव है और चित्रकला का प्रत्येक क्षेत्र चाहे वह धार्मिक हो अथवा सांस्कृतिक मनोरंजन हो अथवा ज्ञानार्जन सभी मानवाकृतियों से पूर्ण है।

संस्कारों के साथ–साथ ही प्रत्यक्षीकरण व्यक्तिगत रूचि पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है इसलिए ही मानव इस विशाल संसार में से केवल वही वस्तु देखना है जिसे वह देखना चाहता है। काव्य या चित्र में मानव रूप का वर्णन करता है या मानव रूप चित्रित करता है तो उसमें सौन्दर्य गुण बढ़ाने के लिए अलंकारों और उपमानों का सहारा लेता है और मानवरूप का सादृश्य प्रकृति से करता है जिसमें वह उन उपमानों को चुनता है जो सौन्दर्य की पूर्णता का आभास देते हैं और मानव का प्रकृति से सादृश्य कहीं उसके गुणों की समानता कहीं रंग व आकार और कहीं सन्तुलन अनुपात आदि की समानता के आधार पर निर्धारित किया जाता है। जिस प्रकार कमल की उपमा नेत्रों और मुख के लिए दी जाती है लेकिन नेत्रों के लिए जहाँ कमल का आकार मान्य है वहीं मुख की सादृश्यता उसके गुणों और रंगों से की जाती है।

भारतीय साहित्य इस प्रकार की अलंकारिता और उपमानों से भरा पड़ा है जहाँ नायक–नायिका तथा अन्य मानवाकृतियों की सादृश्यता प्रकृति के सुन्दर उपमनों से की गई है। धीरे–धीरे मनुश्य का कार्यक्षेत्र कुछ बढ़ गया। उसके अनुभवों में वृद्धि हुई और उसमें स्मृति, इच्छा, कल्पना आदि शक्तियों का आर्विभाव हुआ। आरम्भिक मनुष्य के पास केवल उसकी अभिव्यक्तियों का माध्यम था और इसी कारण सम्भवतः चित्रकला व मूर्तिकला में मानवाकृति का अधिक चित्रण हुआ।

भारतीय कला एवं संस्कृति में चित्रकला का विशेष महत्व रहा है और प्राचीन साहित्यों में चित्रकला को सभी कलाओं से श्रेष्ठ बताया गया है। चित्रकला में मानवाकृति को विशेष स्थान प्राप्त है। प्राचीन साहित्य में मानवाकृति चित्रण के लिए विभिन्न नियम निर्धारित किये गये और धार्मिक देवी–देवताओं के चित्र या मूर्ति बनाने के लिए उनके प्रातीक–आसन आयुध व मुद्राओं का निश्चित स्वरूप निर्धारित किया गया और इन्हीं के आधार पर चित्र या मूर्ति बनने लगे।

प्रत्यक्ष का अर्थ है आँखों को दिखाई देने वाला या मानव मस्तिष्क द्वारा किसी वस्तु को ग्रहण करना। प्रत्यक्ष के उपकरण मानव की ज्ञानेन्द्रियाँ हैं लेकिन ज्ञानेन्द्रियों से अधिक आँखों का प्रत्यक्षीकरण में मुख्य कार्य है और अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ केवल प्रत्यक्ष में सहायक मात्र होती है। बिना आँखों के देखे केवल छूकर या सुनकर हम अपने पूर्व संस्कारों के द्वारा अनुमान तो लगा सकते हैं, लेकिन बिना आँख से देखे प्रत्यक्ष सम्भव नहीं है जबकि केवल आँख से देखकर अन्य ज्ञानेन्द्रियों की सहायता के बिना हम प्रत्यक्षीकरण कर सकते हैं।

ज्ञानेन्द्रियों के अलावा हमारे मन व संस्कार अथवा संस्कृति का भी प्रत्यक्ष में विशेष योगदान होता है किसी भी वस्तु को प्रत्यक्ष करते ही हमारी संवेदनाएँ जागष्त हो जाती हैं और पूर्वानुभव द्वारा हमें पता चल जाता है कि इसका स्पर्श गन्ध, स्वाद आदि कैसा है और हम उसको बिना स्पर्श किये, बिना सूँघे उसका प्रत्यक्ष अनुभव कर लेते हैं। इस प्रकार संवेदनायें हमारे अन्दर पहले से ही विद्यमान होती है जो हमारे उन पूर्व संस्कारों से पूर्ण होती है जो हमें वस्तु का ज्ञान करा देते हैं। इसके साथ ही संस्कारों के द्वारा अंग प्रत्यंग मात्र को अलग–अलग पहचानने में भी सहायता मिलती है यदि किसी स्थान पर अनेक आकृतियों आँख, नाक, कान भी हैं तो उन्हें देख कर हमें यह प्रत्यक्ष होना चाहिए कि ये आकृतियाँ मानव अंग है अथवा पशु पक्षी विशेष के अंग है।

मनुष्य किसी आकृति को देखकर सर्वप्रथम उसकी छाया को देखकर उसकी पहचान करता है तत्पश्चात् वह उस छाया के आधार पर उसके अंग प्रत्यंगों को पहचान कर उस आकृति की पहचान करता है इसके साथ ही उसके पूर्वानुभव के संस्कार उसको यह ज्ञान कराते हैं कि आकृति किसी मानव की है अथवा पशु विशेष की है और स्वभावतः मनुष्य सार्वभौमिक रूप से जानवरों के या मानव के अंग प्रत्यंगों में विभेद करने लगता है।

इस प्रकार किसी कलाकार या किसी साधारण व्यक्ति के मस्तिश्क में एक–एक अंग का अनुभव होता है और उसी संस्कार स्मृति के आधार पर वह उनका निर्णय करके यह विचारता है कि ये अंग प्रत्यंग किसी व्यक्ति विशेष अथवा पशु विशेष के हैं।

संस्कारों के साथ–साथ ही प्रत्यक्षीकरण व्यक्तिगत रूचि पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है इसलिए ही मानव इस विशाल संसार में से केवल वही वस्तु देखता है जिसे वह देखना चाहता है और उसे ही सुनता है जिसे वह सुनना चाहता है। इसके साथ ही मानव अपनी व्यक्तिगत रूचि के आधार पर जो उसे सबसे अधिक सुन्दर लगता है उसे ही बार–बार देखता है ओर प्रत्यक्ष करता है केवल बहुत अधिक सुन्दर ही नहीं बहुत अधिक असुन्दर को भी मानव मस्तिष्क बार–बार प्रत्यक्ष करता है। इस प्रकार असामान्य होने के कारण मानव मस्तिष्क पर अेधिक सुन्दर और अधिक असुन्दर की छवि भी अधिक समय तक रहती है।

किसी वस्तु को देखने के निमित्त उसके दो पक्ष होते हैं–

(1) वस्तु का 'रूप'

(2) वस्तु की 'छवि'

'रूप' से हमारा अभिप्राय किसी वस्तु की आकृति, रंग और आकार से है लेकिन 'छवि' उसका एक भावरूप मात्र होती है।

रूप प्रत्यक्ष होता है जो आँखों को स्पष्ट दिखाई देता है और छवि उस रूप का मानस रूप होता है जो हमारे मस्तिष्क में रहता है, मानव प्रत्यक्ष में रूप को देखकर अपने मस्तिष्क में उसकी छवि बना लेता है और इस छवि का ही पुनः प्रत्यक्षीकरण में विशेष योगदान होता है क्योंकि जब भी कोई मिलता जुलता रूप देखता है तो उसकी ज्ञानेन्द्रियों से व उसकी छवि से जो उसके मस्तिष्क में पहले से ही विद्यमान है वह जान जाता है कि रूप किसका है। इस प्रकार मानव सबसे पहले छवि पहचानता है फिर रूप तथा उसके बाद ही विशेष को पहचानने लगता है।

जो प्रागैतिहासिक मानवकृतियाँ प्राप्त हैं उनमें केवल एक छाया सी दिखाई देती हैं इन मानवाकृतियों को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि ये आकृतियाँ किसी व्यक्ति विशेष की है यहाँ तक की अति प्रारम्भिक मानव रूपों में हमें नारी आकृति का विभेद भी दिखाई नहीं देता है लेकिन कुछ बाद के चित्रों में मानवाकृतियों के छवि रूप दिखाई देते हैं और अब छवि व छाया दोनों ही प्रकार के रूप में नारी व पुरूष भेद की आकृतियाँ बनने लगी थी। नारी व पुरूष आकृतियों के भेद को दिखाने के लिए सर्वप्रथम आदि चित्रकार ने प्रजनन अंग बनाने शुरू किए और अन्य छवि चित्रों के साथ–साथ छाया चित्रों में भी नारी–पुरूष विभेद दिखाया जाने लगा। बाद में उसने अपने चित्रों में मानव देह के अंगों की विस्तृत रूप रेखाएँ दिखाने शुरू की जिसमें उसने अंगों के उभारों व केश–विन्यास से नारी पुरूष आकृतियों को अलग–अलग दर्शाया है परन्तु चेहरे पर उसका ध्यान सबसे बाद में गया और जब धीरे–धीरे चेहरे व उसके अंगों – आँख, नाक, कान आदि को दिखाने लगा तो शरीर के अन्य अंगों के यथार्थ को कम महत्व दिया। मानवाकृति से ही व्यक्ति विशेष की पहचान होती है और इसी से व्यक्ति चित्रों की परम्परा का जन्म हुआ।

जब व्यक्ति चित्र बनाए जाते हैं तो उसमें आकृति, रंग व आकार का विशेष महत्व होता है यदि किसी व्यक्ति विशेष के नेत्र बनाएं हैं तो उसके नेत्रों का आकार कैसा है तथा उसके नेत्रों का रंग कैसा है काला है या भूरा है और वैसा ही रंग व आकार व्यक्ति चित्रों में बनाया गया है लेकिन कलाकार साधारयणतः मानवाकृति चित्रण में व्यक्ति चित्र नहीं बनाता कलाकार तो एक जाति मात्र का चित्रण करता है जिसमें वह देखता है कि मनुष्य जाति की आकृति के प्रमाण किस प्रकार के ही सकते हैं। यही नहीं, पक्षियों में भी एक विशेष जाति के पक्षी के साधारण प्रमाण होते हैं। इस प्रकार कलाकार उन रूपों का चित्रण करता है जो सम्पूर्ण मानव जाति में या पशु जाति में या पक्षी जाति में सार्वभौमिक रूप से आरोपित होते हैं जैसे एक सामान्य मानव उसे ही कहा जाता है जिसकी एक विशेष प्रकार की शरीर संरचना हो जिसमें दो आँखें, नाक, दो कान, होठ हो, दो हाथ और पैर हों इसी प्रकार सभी पक्षियों में कुछ सामान्य लक्षण होते हैं जैसे पंख, पूँछ, चोंच आदि। और कलाकार केवल एक रूपानुभूति द्वारा ही दर्शक को यह

अनुभव करा देता है कि यह रूपानुभूति किसी मानव की है या पक्षी की है।

कवि या कलाकार जब अपने कलाकार जब अपने काव्य या चित्र में मानव रूप का वर्णन करता है या मानव रूप चित्रित करता है तो उसमें सौन्दर्य गुण बढ़ाने के लिए अलंकारों और उपमानों का सहारा लेता है और मानवरूप का सादृश्य प्रकृति से करता है जिसमें वह उन उपमानों को चुनता है जो सौन्दर्य की पूर्णता का आभास देते हैं और मानव का प्रकृति से सादृश्य कहीं उसके गुणों की समानता कहीं रंग व आकार और कहीं सन्तुलन अनुपात आदि की समानता के आधार पर निर्धारित किया जाता है जैसे 'चन्द्रमुखी' अर्थात् चन्द्रमा के समान मुख यहाँ आकार व रंग से नहीं अपितु चन्द्रमा के शीतल चाँदनी के गुण से शीतल चमक वाले मुख की उपमा दी गई है और 'शुक नासिका' अर्थात् तोते की चोंच के समान नासिका यहाँ पर उसका आकार नहीं वरन् षुक नासिका के समान लाल रंग वाली नासिका से अभिप्राय है क्योंकि हल्की लालिमा लिए नासिका सौन्दर्य और उत्तम स्वास्थ की प्रतीक बताई गई है। इसी प्रकार कमल की उपमा नेत्रों और मुख के लिए दी जाती है लेकिन नेत्रों के लिए जहाँ कमल का आकार मान्य है वहीं मुख की सादृश्यता उसके गुणों और रंगों से की जाती है।

भारतीय साहित्य इस प्रकार की अलंकारिता और उपमानों से भरा पड़ा है जहाँ नायक–नायिका तथा अन्य मानवाकृतियों की सादृश्यता प्रकृति के सुन्दर उपमनों से की गई है।

शरीर मुद्रायें

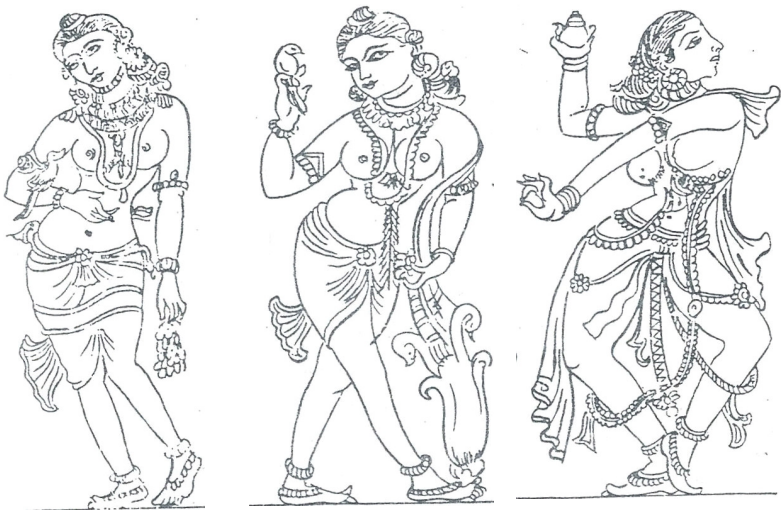

ABHANGH
आभंग

TRIBHANG
त्रिभंग

ATIBHANG
अतिभंग

अवनी बाबू को प्राचीन चित्रों तथा मूर्तियों में जो सादृश्य उत्तम प्रति हुआ उसमें से उन्होंने प्राकृतिक आकृतियों का मानवीय अंगों के उपमान के रूप में एक तालिका बनाई जिसमें मुख्य शरीर अंगों की उपमा इस प्रकार दी गई है:–

अण्डाकृति – सात्विक भाव युक्त मुख मण्डल
पान का पत्ता – चंचलता युक्त मुखमण्डल
चाप – स्त्री की कमान जैसी तनी भौहें
चन्दनकाष्ट पट्टिका – ललाट
कमल कली – सात्विक नेत्र
खंजन पक्षी – प्रसन्न नेत्र
मृगी नेत्र – भोले नेत्र
मीन – चंचलता युक्त नेत्र
शुक चंचु – नासिका
रक्त पुश – नारी के अधर
षंख की त्रिवली – कण्ठ (गम्भीर ध्वनियुक्त)
कपाट – पुरूषों का वक्ष
गोमस्तक – पुरूषों का धड़
सिंह कटि – पुरूष की कमर
डमरू – स्त्री की कटि
मत्स्य – पैरों की पिंडलियों की दृढ़ मांसलता
पल्लव – स्त्री की हाथों तथा पैरों की कोमलता
कमल पत्र – भिक्षा पात्र युक्त हाथ

उपमानों और अलंकारों के अतिरिक्त मानवकृतियों पर उस क्षेत्र विशेष में रहने वाली मानव जाति का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। उदाहरणतय यदि अजन्ता में चित्रित मानवकृतियों की तुलना हम उसी क्षेत्र में रहने वाली मानव जाति से करे तो काफी समानता पाते हैं। जिस प्रकार की हष्ट–पुष्ट एवं सुडौल आकृतियाँ अजन्ता में बनी हैं उस क्षेत्र में रहने वाली नारी आकृतियाँ आज भी अजन्ता में चित्रित नारी आकृतियों से काफी समानता रखती है। इसी प्रकार राजस्थान में मेवाड़ क्षेत्र में तथा किशनगढ़ क्षेत्र में बनी मानवाकृतियों में काफी भिन्नता है लेकिन यदि इन दोनों क्षेत्रों में रहने वाले लोगों से इसी क्षेत्र की मानवाकृति वहाँ की रहने वाली मानव जाति से काफी समता रखता है और किशनगढ़ की पतली आकृतियाँ बनी ठनी के सौन्दर्य के समान ही चित्रित की गई है।

लेकिन मुगल समय में आकर जाति चित्रण के स्थान पर व्यक्ति चित्रण अधिक प्रभावी रहा और उपमानों व अलंकारों का प्रयोग कम होने लगा और मानवाकृतियों यथार्थवादी बनने लगी।

सम्पूर्ण भारतीय चित्रकला का विकास अलग–अलग युगों में विभिन्न स्थानों पर स्वतन्त्र रूप में हुआ। भारत की सीमाऐं इतिहास क्रम में बदलती रही हैं इसलिए भारतीय चित्रकला भी सर्वदेशीय न होकर क्षेत्रीय रूप में विकसित हुई। चित्रकला में मानवाकृति पर भी क्षेत्रीय प्रभाव अधिक प्रभावशाली रहा है। विभिन्न युग तथा स्थान कला में ऐसा क्रमबद्ध सम्बन्ध ज्ञात नहीं होता है जिससे पूरे देश की कला

को विकास के एक क्रम में रखा जा सके परन्तु एक अदृश्य सांस्कृति सम्बन्ध इन कलारूपों में अवश्य अनुभव किया जा सकता है।

चित्रकला में मानवाकृति को विशेष स्थान प्राप्त है। हमारे मन व संस्कार अथवा संस्कृति का भी प्रत्यक्ष में विशेष योगदान होता है किसी भी वस्तु को प्रत्यक्ष करते ही हमारी संवेदनाएँ जागृत हो जाती हैं और पूर्वानुभव द्वारा हमें पता चल जाता है। उसके पूर्वानुभव के संस्कार उसको यह ज्ञान कराते हैं कि आकृति किसी मानव की है अथवा पशु विशेष की है और स्वभावतः मनुष्य सार्वभौमिक रूप से जानवरों के या मानव के अंग प्रत्यंगों में विभेद करने लगता है।

उसी संस्कार स्मृति के आधार पर वह उनका निर्णय करके यह विचारता है कि ये अंग प्रत्यंग किसी व्यक्ति विशेष अथवा पशु विशेष के हैं। मानव सबसे पहले छवि पहचानता है फिर रूप तथा उसके बाद ही विशेष को पहचानने लगता है। मानव रूपों में हमें नारी आकृति का विभेद भी दिखाई नहीं देता है लेकिन कुछ बाद के चित्रों में मानवाकृतियों के छवि रूप दिखाई देते हैं नारी व पुरूश भेद की आकृतियाँ बनने लगी थी। नारी व पुरूष आकृतियों के भेद को दिखाने के लिए सर्वप्रथम आदि चित्रकार ने प्रजनन अंग बनाने शुरू किए और अन्य छवि चित्रों के साथ–साथ छाया चित्रों में भी नारी–पुरूष विभेद दिखाया जाने लगा।

जब धीरे–धीरे चेहरे व उसके अंगों – आँख, नाक, कान आदि को दिखाने लगा तो शरीर के अन्य अंगों के यथार्थ को कम महत्व दिया। मानवाकृति से ही व्यक्ति विशेष की पहचान होती है और इसी से व्यक्ति चित्रों की परम्परा का जन्म हुआ। जब व्यक्ति चित्र बनाए जाते हैं तो उसमें आकृति, रंग व आकार का विशेष महत्व होता है यदि किसी व्यक्ति विशेष के नेत्र बनाएं हैं तो उसके नेत्रों का आकार कैसा है तथा उसके नेत्रों का रंग कैसा है काला है या भूरा है और वैसा ही रंग व आकार व्यक्ति चित्रों में बनाया गया है लेकिन कलाकार साधारयणतः मानवाकृति चित्रण में व्यक्ति चित्र नहीं बनाता कलाकार तो एक जाति मात्र का चित्रण करता है जिसमें वह देखता है कि मनुष्य जाति की आकृति के प्रमाण किस प्रकार के ही सकते हैं। उपमानों और अलंकारों के अतिरिक्त मानवकृतियों पर उस क्षेत्र विशेष में रहने वाली मानव जाति का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। भारत की सीमाऐं इतिहास क्रम में बदलती रही हैं इसलिए भारतीय चित्रकला भी सर्वदेशीय न होकर क्षेत्रीय रूप में विकसित हुई। चित्रकला में मानवाकृति पर भी क्षेत्रीय प्रभाव अधिक प्रभावशाली रहा है।

इस प्रकार भारतीय कला में मानवाकृति एक रेखा से प्रारम्भ होकर शनैः शनैः रूप बदलती अपने प्राकृति यथार्थ रूप में सामने आई। उसके इस रूप परिवर्तन में भौगोलिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक सभी कारणों का प्रभाव रहा इसके साथ ही माध्यम के आधार पर भी मानव रूप में परिवर्तन आता गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शर्मा, गोपीनाथ – नख शिख, सरस्वति*
2. *मेघ रमेश कुंतल –अथातों सौन्दर्य जिज्ञासा–द मैक मिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया*
3. *राय कृष्ण दास–भारत की चित्रकला, लीडर प्रेस, इलाहाबाद*
4. *अग्रवाल डॉ0 वासुदेव शरण–भारतीयकला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी*